कैसे होते हैं सेवाकाल में अध्यापक प्रशिक्षण? क्या वास्तव में इनसे शिक्षकों की क्षमता विकसित होती है? यह लेख इन प्रशिक्षणों की हकीकत से पाठकों को रूबरू कराता है। इन प्रशिक्षणों के प्रति प्रशासन के अगंभीर नजरिए और पूरी व्यवस्था में शिक्षक की हैसियत से पैदा हुई उनकी कुंठाओं को सामने रखता है।

शारदा कुमारी

दिल्ली की आर. के. पुरम् डाइट में वरिष्ठ प्राध्यापक हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के अनुरूप विकसित एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति की सदस्य रही हैं।

प्रशिक्षण होता है, मगर...

बात बहुत पुरानी नहीं है। सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम अभी अपनी शैशवावस्था में ही था। इसकी अनुगूंजें चहुं ओर फैल भी नहीं पाई थीं कि फरमान जारी हुआ, ''अगले सप्ताह बारह-बारह दिन के 96 अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम शिविर चलाए जाने हैं।''

डायटों में काम करने वालों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम किसी तरह का अजूबा नहीं था लेकिन 'फरवरी माह' में 'इन सर्विस टीचर्स ट्रेनिंग!' ये क्या हो गया डायरेक्टर को?' कुछ-कुछ ऐसे ही अचरज भरे सवालों से डायरेक्टर का घेराव हुआ।

दरअसल औपचारिक विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था में साल भर कुछ हो या न हो, फरवरी का महीना ऐसा होता है जब अध्यापक और बच्चे ही नहीं, कुछ अधिकारी भी बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के बारे में मुस्तैद हो जाते हैं और माता-पिता की सक्रियता के तो कहने ही क्या! आखिर एक माह बाद परीक्षाएं होनी हैं, अब पढ़ाई नहीं होगी तो कब होगी! ऐसे महत्त्वपूर्ण महीने में अध्यापकों को स्कूल से दूर कर ट्रेनिंग में भेजना क्या ठीक होगा!

''देखिए ट्रेनिंग तो होनी ही है, क्योंकि सर्व शिक्षा अभियान में इसके लिए बहुत बड़ा फंड रखा गया है और इस मामले में दिल्ली सबसे पीछे है, इस फाईनेंशियल सत्र से पहले-पहले ट्रेनिंग हो जानी चाहिए।'' दो टूक जबाव था अधिकारियों का।

मगर जब परीक्षाएं सिर पर हों, तब क्या कक्षाओं को खाली छोड़ना ठीक होगा? ''इसमें मुश्किल क्या है? सुबह की पारी वाले अध्यापक दोपहर को ट्रेनिंग लेंगे, दोपहर वाले सुबह में, बस बात खत्म।'' अधिकारी को समाधान निकालने में पल भर भी नहीं लगा। हम सभी चमत्कृत थे। उपस्थिति पंजिका, रजिस्ट्रेशन फार्म, बैनर, संदर्भ व्यक्तियों की दस-बारह साल पुरानी सूची, आदि लेकर अपने-अपने ठिकानों पर पहुंच गए और ग्राहकों का (अध्यापकों) मुस्तैदी से इंतजार करने लगे।

कोर्स डिजाइन तैयार करने की कोई जरूरत नहीं थी। रिटायर हुए अध्यापक प्रशिक्षकों द्वारा तैयार कोर्स डिजाइन फाइलों में से ढूंढ़ लिया गया था। यह सोचने की जरूरत भी नहीं समझी गई कि बहुत से क्षेत्रों में हो रहे शैक्षिक नवाचार को इस ट्रेनिंग के जरिए इन अध्यापकों तक पहुंचाया जाए या नहीं। हमें तो बस ट्रेनिंग करनी थी। क्योंकि 'सर्व शिक्षा अभियान' में स्कूली शिक्षा को गुणवत्ता की चरम सीमा तक पहुंचाने में ट्रेनिंग को बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया था। किस प्रकार की ट्रेनिंग हो, यह विचार करने की आवश्यकता नहीं थी।

नियत तिथि को तय समय पर मैं अपने केन्द्र, सर्वोदय विद्यालय, महिपालपुर में अपने दो संदर्भ व्यक्तियों के साथ मुस्तैदी से तैनात होकर अध्यापकों का इंतजार करने लगी। विद्यालय के प्रशासन द्वारा प्राथमिक कक्षाओं वाली विंग मुझे दे दी गई।

मेरे केन्द्र पर सुबह की पारी में 150 और शाम की पारी में ढाई सौ अध्यापकों (पीजीटी अंग्रेजी) को पहुंचना था। सर्व शिक्षा अभियान के वित्तीय मानकों के अनुसार 250 अध्यापकों पर एक दिन में कुल पांच संदर्भ व्यक्ति बुलाए जा सकते थे यानी एक कक्ष में पचास अध्यापक तो होने ही चाहिएं।

कभी मैं कमरे का आकार देखती तो कभी 50 की संख्या पर विचार करती। गतिविधिपरक प्रशिक्षण तो दूर की बात, अध्यापकों को अध्यापकोचित गरिमा के साथ बैठाना भी संभव नहीं था। बड़ी सहजता के साथ जतला दिया गया कि 'आने वाले मास्टर ही हैं न, कोई अफसर तो नहीं हैं, काहे को हलकान हुए जा रही हो।' गोया मानवोचित गरिमा के साथ बैठने का हक सिर्फ अफसरों को ही है।

कमरे के आकार के बाद नजर फर्नीचर पर गई। बहुत ही कम चौड़ाई वाली छोटी-छोटी बैंचें थीं वहां पर। 'पी.जी.टी.' यानी अधिकतर अधेड़ावस्था में तो होंगे ही। दुबले-पतले अध्यापक तो बैठ लेंगे पर जो सामान्य से जरा भी अधिक भारी शरीर वाले हुए तो? और यदि कोई ऐसी प्रतिभागी आ गई या आ गया जिसके घुटनों में दर्द रहता हो या कोई और शारीरिक अक्षमता/असशक्तता हुई तो?

''अजी परेशान मत होओ। टीचरों को तो कहीं भी बैठा लो, सिवा अपने सर पे चढ़ाने के। बैंचे दे दी, कम है क्या? यू.पी., बिहार में तो टाट-पट्टी भी नसीब नहीं ट्रेनिंग के लिए। और फिर जो गद्देदार कुर्सियां चाहिएं तो अफसरी करते। टीचर काहे बन गए।''

चार साल पहले सामाजिक अध्ययन के अध्यापक से प्रधानाध्यापक यानी, अफसर की कुर्सी तक पहुंचने वाले उस विद्यालय के प्रधानाचार्य मेरी समस्याओं का निराकरण कर रहे थे या फिर अध्यापकों की हैसियत के बारे में बता रहे थे, यह तय करना मुश्किल तो नहीं पर कष्टदायक जरूर था।

उन्होंने अपने फुर्तीलेपन और कर्तव्यपरायणता का परिचय देते हुए बताया कि कल शाम ही निदेशालय से प्रशिक्षण के बारे में सूचना प्राप्त हुई। मैंने फटाफट पहली कक्षा के पांचों सैक्शन आपके लिए खाली करवा दिए।

''और इन कक्षाओं के बच्चे?''

अजी वे, वे सब हॉल में हैं। एक दरी पर बैठा दिया है पांचों सैक्शन को।

''बैठी हैं टीचरें घेर के उनको। इन टीचरों को भी तो दोपहर को नारायणा वाले स्कूल में पहुंचना है ट्रेनिंग के लिए।'' जितने असहज मेरे सवाल थे उतने ही सहज उत्तर थे प्रधानाचार्य जी के।

आठ सवा आठ बजे तक कमरे भर चले थे। पंजीकरण फार्म भरना शुरू हुआ। इस काम में देशबंधु कॉलेज से आए संदर्भ व्यक्ति मेरी मदद कर रहे थे। अध्यापकों की संख्या देखकर उन्होंने आश्चर्य के साथ अध्यापकों से कहा, ''मैं तो सोच रहा था कि आप में से एक भी नहीं पहुंचेगा। आप की नजर में इस तरह से प्रशिक्षण के लिए इधर-उधर पटका जाना जायज है क्या? और फिर इस समय आप लोग किसी तरह के प्रशिक्षण की जरूरत महसूस कर रहे हैं क्या?''

संदर्भ व्यक्ति ने जैसे दुखती रग पर हाथ रख दिया हो। प्रशासनिक निर्ममता से भीतर तक आहत हुए अध्यापकों ने एक-एक कर अपनी कहनी शुरू की :

''आप जानते हैं हमारी विभागीय हैसियत के बारे में? शायद नहीं, तभी इतना कुछ कह गए। आज की तारीख में आप हमें दुमकटा कुत्ता समझ लीजिए, जिसे बस कक्षा में बच्चों के सामने भौंकना होता है। या फिर ऐसा परिन्दा जिसकी गर्दन अफसर के हाथ में होती है। हाथ जरा-सा भारी पड़ा नहीं कि समझो गर्दन गई यानी नौकरी करनी भारी हो जाएगी। अब वो जमाने गए जब हम आवाज उठा लिया करते थे। अब तो सस्पेंशन ऑर्डर जैसे पहले से ही तैयार रहते हैं। भलाई इसी में है कि ऑर्डर जायज है या नहीं, चुपचाप अमल करो।''

उन्हीं में से एक अध्यापिका ने बताया कि एक समय था जब वे बड़ी-बड़ी मीटिंगों में बुलाई जाती थीं। स्कूलों के लिए कौनसे नए कार्यक्रम आ रहे हैं या फिर अध्यापकों के लिए क्या नए आदेश/निर्देश आ रहे हैं इन सबकी उन्हें अच्छी खासी जानकारी होती थी, क्योंकि योजनाएं बनाने की प्रक्रिया में उनकी सलाह ली जाती थी, पर अब? अब तो बस फरमान जारी होते हैं। कुछ कहने-सुनने की गुंजाइश ही नहीं छोड़ी जाती। बेहूदी बात तो यह कि अफसरों के नीचे बैठे उनके क्लर्क भी हमसे ऐसे पेश आते हैं जैसे हमारी हैसियत इनसे भी कमतर है। भई, तनख्वाह तो हमारी इन क्लर्कों से ज्यादा ही है न, मगर इनके बात करने का अंदाज तो ऐसा होता है जैसे ये ही हमारे असली अफसर हों। ऐसा रोब मारते हैं हम पर कि अपने टीचर होने पर शर्म आती है। अगर दुनिया अपने बच्चों को डॉक्टर-इंजीनियर बनाना चाहती है तो बुरा क्या है? अपने महकमे में इस तरह की जिल्लतें तो नहीं सहनी पड़ती होंगी। हमसे अधिकारी कहते हैं, ''आधे दिन की नौकरी है आपकी तो, एक तरह से मुफ्त की कमाई समझो।''

इससे पहले कि ये महिला अध्यापक और कुछ कहती कि पीछे से आवाज आई, ''सीधे से

कहो न कि जैसे हम बच्चों के साथ उनकी बगैर स्वीकृति के कुछ-कुछ करते रहते हैं वैसे ये अफसर भी हम पर नियंत्रण रखते हैं। आज ट्रेनिंग पर चले जाओ, कल पशु गणना करने जाना। फिर, इंडस्ट्रियल सर्वे पर जाना होगा फिर...''

''...फिर गाड़ी में पेट्रोल भरवाने भी जाना होगा'', पास ही बैठे अध्यापक ने चुटकी ली। पता चला कि कुछ पुरुष अध्यापकों को अपने अधिकारियों के कुछ निजी काम भी करने होते हैं जैसे-- घर में पुताई हो रही है तो उसका सामान जुटाना, मकान बन रहा है तो काम की देख-रेख करना, यात्रा पर जाना है तो टिकट आदि का प्रबंध करना।

यह भी पता चला कि विज्ञान के अध्यापकों की स्थिति कुछ बेहतर है क्योंकि वे अपने अधिकारियों के बच्चों को ही नहीं अपितु मंत्रियों के बच्चों को भी मुफ्त में ट्यूशन दे आते हैं। इसलिए उनकी तो कदर है विभाग में। उनका स्थानांतरण उनसे बिना पूछे नहीं किया जाता। कक्ष में बैठे सभी प्रतिभागियों ने एक गहरी सांस ली और बड़ी उदासी से कहा कि हमारी इज्जत तो थोड़ी-बहुत वह गरीब आदमी कर लेता है जो जी-जान से यही चाहता है कि उसका बच्चा इंग्लिश पढ़ना-लिखना सीख ले। हमारी ट्यूशन की जरूरत तो उस गरीब को ही है या फिर उस अधिकारी को जिसे अंग्रेजी में नोटिंग करनी नहीं आती। अंग्रेजी का एक हर्फ भी नहीं जानते और देखो बन बैठे अफसर। मंत्रालय में कहीं रिपोर्ट देनी हो तो हमसे तैयार करवाएं, कभी भाषण देना हो तो भी हम ही लिखेंगे और फिर हेकड़ी भी हम पर मारेंगे। एक बार भी मना किया नहीं कि किसी न किसी बहाने इन्क्रीमैंट रोक देंगे। बातें तो अभी और होतीं लेकिन चपरासी ने हांफते-हांफते खबर दी कि ई.ओ. मैडम आई हैं। खबर का सुनना था कि सभी के जज्बातों का बहता सैलाब थम-सा गया। सभी मानो काठ के पुतले बन गए हों।

प्रधानाध्यापक उनकी अगवानी को दौड़े और इधर मैंने पंजीकरण प्रपत्र समेटने व गिनने शुरू किए क्योंकि मुझे बताना था कि कितने अध्यापकों ने रिपोर्ट किया है और कितनों ने नहीं। रिपोर्ट न करने वालों के विरुद्ध तत्काल गंभीर अप्रिय कार्यवाही करने की बात आदेश पत्र में लिखी हुई थी।

यह बात फरवरी 2003 की है। अध्यापक की हैसियत में आज भी कोई फर्क नहीं आया है। सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा आयोग या फिर कोई और कार्यक्रम हो, अपने विभाग में अध्यापक की हैसियत कठपुतली से अधिक कुछ भी नहीं है। अपने अधिकारियों से खाई चोट की भरपाई वे अपने विद्यार्थियों से करते हैं और शिक्षा के अधिकार अधिनियम को बेमानी बना देने में संकोच नहीं करते।

आज के समय में शिक्षकों के साथ जो सबसे बुरा हो रहा है वह यह कि अपनी कक्षा में उन्हें क्या पढ़ाना है, कैसे पढ़ाना है और कब पढ़ाना है, यह भी तय करने का अधिकार उन्हें नहीं है। प्रत्येक कक्षा और विषय की समय सारिणी ऊपर से तय होकर आती है। अध्यापक उससे इतर यदि कुछ पढ़ाते पाए गए तो तुरंत 'एक्शन' हो जाएगा, यह आदेश हर स्कूल में हर अध्यापक के पास है। बच्चे आज क्या पढ़ना चाहते हैं, वे कैसे पढ़ना चाहेंगे यह उनके अध्यापक से बेहतर और कौन जान सकता है, पर उसके इस अधिकार पर नकेल डाल दी गई है। अब उसे सोमवार को वही पढ़ाना है जो ऊपर से लिखकर आया है, भले ही शनिवार को पिछला पाठ पूरा न हो पाया हो। एक तरफ समावेशी कक्षा में अध्यापक से हर बच्चे की गति व शैली के प्रति समझ बनाने की अपेक्षा की जा रही है तो दूसरी तरफ उसकी कक्षा के बच्चों

का प्रोफाइल समझे बगैर एक निश्चित अवधि में विषय विशेष पढ़ाने की मांग भी की जा रही है।

अपने विद्यार्थियों के साथ अध्यापक का जो विश्वास का रिश्ता कभी था वह कहीं नजर नहीं आता। अध्यापक अपनी स्वाभाविक भूमिका भूल चुके हैं। अपने व्यवसाय की नैतिकता की मांगों को नजरअंदाज करने को मजबूर किए जा रहे हैं। अपनी नौकरी बचाने के लिए वे मजबूरन ऐसी चीजें कर रहे हैं जो उनके बच्चों को नुकसान पहुंचा रही हैं, उनके हौसले पस्त कर रही हैं। समाज को भावनात्मक सहारा देने वाले यह बौद्धिक नेता खुद लड़खड़ा रहे हैं। भला हो छठे वेतन आयोग का जिसने इन लड़खड़ाते कदमों को कुछ सहारा देने की कोशिश की है।

अभी सेवाकालीन प्रशिक्षण की जो दृश्यावली प्रस्तुत की गई वह डाइटों द्वारा आयोजित किए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों का नियमित चित्र नहीं है, पर यदा-कदा होने वाली घटना भी नहीं है। जिस अकादमिक सत्र में अध्यापक जनगणना, औद्योगिक इकाइयों का सर्वेक्षण, पशु सर्वेक्षण जैसे कार्यों में झोंक दिए जाते हैं, उन सत्रों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों को लेकर इस तरह की बेबसी पैदा हो ही जाती है।

अध्यापकों को यह लगता है कि उनसे तो नैतिकता व सच्चाई भरे आचरण की मांग की जा रही है पर उनकी स्वायत्तता को खंडित किया जा रहा है। वे मान चुके हैं कि यह सभी आजामइशें उन्हें काबू में रखने और उन्हें उनकी हैसियत का बोध कराने के लिए की जाती हैं। एक ओर तो उन्हें तंत्र के भीतर रहकर कुछ सीखने (?) के लिए बाध्य किया जाता है तो दूसरी ओर कक्षाओं से दूर भी रखा जाता है। व्यवस्था द्वारा अपने प्रति बढ़ते अविश्वास और गैर-मानवीय व्यवहार ने उनके आत्मविश्वास को झकझोरा है और उन्हें यह मानने को बाध्य किया है कि भले ही वे राष्ट्र के निर्माता कहलाए जाते हैं पर औपचारिक विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था के वे सबसे कमजोर और निरीह किस्म के प्राणी हैं। सरकारी तंत्र के इस माहौल में बहुत कुछ ऐसा भी हो रहा है जो अध्यापकों को पारंपरिक किस्म के कामों की जकड़बंदी से बाहर निकाल बाहर बौद्धिक नेता के रूप में उभरने के मौके दे रहा है।

सेवारत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों की गुणवत्ता का एक बड़ा मानक यह है कि वे इस बात की पहचान करें कि अध्यापकों के लिए प्रासंगिक क्या है? उनकी वास्तविक जरूरतों को ध्यान में रखकर इन कार्यक्रमों का स्वरूप तय किया जाए। सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत बनाए गए संकुल संसाधन केन्द्र (ब्लॉक रिसोर्स सेन्टर) जिनका नियंत्रण डाइटों के पास है, ऐसे मंच के रूप में सामने आ रहे हैं। अध्यापक यहां अपने अनुभव साझा करते हैं और अपने प्रयासों पर मनन कर 'करके दिखाए जाने' की मांग को पूरा करने की हर संभव कोशिश करते हैं। यह प्रक्रियाएं शिक्षकों में यह विश्वास जगाती हैं कि उन्हें अपने पेशेवर विकास के लिए केवल विशेषज्ञों से ज्ञान प्राप्त करने पर जोर नहीं देना है अपितु स्व-अधिगम और स्वतंत्र चिंतन के मौकों का लाभ उठाना है।

सेवाकालीन शिक्षा कोई घटना नहीं हो सकती, यह एक प्रक्रिया है जो ज्ञान, विकास और व्यवहार में बदलाव पर आधारित होती है, इसके लिए विद्यालयों में अभ्यास आधारित रणनीतियां जरूरी हैं। यह रणनीतियां विद्यालयी जीवन से जुड़े हर आयाम यथा पाठ्यचर्या, अध्यापन पद्धतियों, बच्चों के पारिवारिक सामाजिक भाषायी संदर्भ से जुड़ी चुनौतियों को

समझने में अध्यापकों की मदद करें। जहां संकुल संसाधन केन्द्र डाइटों की मदद से इन रणनीतियों पर ध्यान देते हैं वहां अध्यापक भी इन कार्यक्रमों के प्रति उत्सुकता के साथ एक तरह की आस्था रखते हैं। यहां उनकी उपस्थिति किसी प्रशासनिक सत्ता के भय अथवा दबाव स्वरूप नहीं होती अपितु नए विचारों के प्रति मुखर भाव से अपनी क्षमता के विकास को ध्यान में रखते हुए स्व-प्रेरित व स्व-निर्देशित होती है। बच्चों के संदर्भ में अपने काम के दायरे को सिकोड़ने को प्रवृत्त हुए अध्यापक इन संकुल बैठकों में उत्साह के पुनर्जीवित किए जाने की जरूरत महसूस करते हैं। शिक्षण प्रतिबद्धता, संगठनात्मक कौशल को लेकर चर्चाएं की जाती हैं। आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी का कक्षायी शिक्षण में कब-कब और किस तरह इस्तेमाल किया जाए, इस तरह के प्रदर्शन सत्र आयोजित किए जाते हैं। समसामयिक मुद्दों पर सारगर्भित जानकारी दी जाती है और उन मुद्दों पर उनके विचार, प्रतिक्रिया भी जानी जाती है। बहुत से अध्यापक तो यह मांग भी करते हैं कि उन्हें सृजनात्मक रूप से प्रश्नपत्र का निर्माण करना सिखाया जाए। उनकी इस मांग को पूरा करने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. जैसी संस्थाओं से विशेषज्ञ आमंत्रित किए जाते हैं जिनके साथ मिलकर अध्यापक प्रश्न पत्र बनाते हैं। शिक्षण में प्रभावशीलता के साथ वेतन में समयानुसार न्यायसंगत वृद्धि, पदोन्नति एवं कल्याण से जुड़ी अन्य बातों पर भी चर्चा की जाती है।

मुश्किल यह है कि उनके बैठने की सही व्यवस्था नहीं हो पाती। कभी-कभी दरियों पर बैठाकर काम चलाना पड़ता है क्योंकि कुर्सियों की संख्या पूरी नहीं होती, यदि है भी तो उनका आकार-प्रकार कुछ इस तरह का होता है कि उम्र-दराज अध्यापक बैठने से डरते हैं। कभी-कभी विद्यालय से फटकार भरा फोन आ जाता है कि क्या मगजपच्ची करने चले गए, फौरन लौटिए फलां-फलां लिस्ट निदेशालय भेजनी है। एक और बात जो खलती है वह है -- पुस्तकों का अभाव। इन संकुल संसाधन केन्द्रों के पास ऐसा कोई बजट नहीं है जिससे ये पुस्तकें खरीद सकें। विषय-विशेषज्ञ कई पुस्तकों के नाम सुझा जाते हैं पर हर किसी से पुस्तक खरीदने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। कभी-कभार तो अध्यापक कह ही पड़ते हैं, "भई, जब पुस्तकों की उपलब्धता सुनिश्चित नहीं कर सकते तो पढ़ने की लालसा भी पैदा मत किया करो।" यदि परंपरागत विषय विशिष्टता की सीमाओं से आगे बढ़ने की अपेक्षा की जाती है तो इच्छित रुझानों का विकास करने के लिए पुस्तकें, आदि तो जुटानी ही होंगी। यदि हम चाहते हैं कि सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले और शिक्षक इसके लिए तैयार हों तो शिक्षकों की शिक्षा पर पुनर्विचार करना होगा और प्रशिक्षणों को शिक्षकों के लिए उपयोगी और रोचक बनाना होगा। साथ ही व्यवस्थाओं को शिक्षकों की गरिमा के अनुरूप बनाना होगा ताकि वे अपनी ऊर्जा को इस दिशा में लगा सकें। ◆